Chapter- 3

तृतीय परिच्छेद

भाषा का काव्यशास्त्रीय सन्दर्भ : काव्यभाषा

कवि द्वारा प्रयोग में लायी जाने वाली भाषा काव्यभाषा कहलाती है। काव्यभाषा, भाषा शक्ति के गहरे अन्वेषण के अनन्तर ही कवि को प्राप्त होती है। जहां वह अधिक कसी हुई, संक्षिप्त तथा सुगठित रूप में होती है वहीं पर मुख्यार्थ से भिन्न अन्यार्थ की प्रतीति भी कराती है। 'काव्य भाषा में सामान्य अर्थ और सामान्य में निहित विशिष्ट अर्थ के समीकरणों के जोड़ इस प्रकार रच जाते हैं कि इनके सहारे कोई भी व्यक्ति उस काव्य में विशेष के निजी संदेश को व्यवस्थित रूप में ग्रहण कर सकता है।'[१] काव्यभाषा सामान्य में निहित गूढ़ता के स्तर को खोलकर उसे अधिक व्यापक आयाम देना चाहती है। ध्वनि, वक्रोक्ति तथा शब्द शक्तियों के नाम से भारतीय काव्यशास्त्रियों ने जिस छाया, कान्ति, गूढ़ागूढ़ व्यंग्य की चर्चा की है वह भाषा शक्ति शब्दार्थ का ही व्यापार है। भाषा की आत्मा शब्द में न रहकर उसके व्यापार में बसती है। इसीलिए भाषा के शब्द तनाव की स्थिति में आने के लिए लाचार हो जाते हैं। शब्द शक्ति विवेचन में भी इस बात की ओर संकेत किया गया है कि काव्य का प्राणभूत व्यंग्यार्थ शब्द व्यापार के ही द्वारा उद्बुद्ध होता है तथा व्यंजना भाषागत विविध सन्दर्भों (वक्ता बोद्धव्य आदि) की सहायता से शब्द में निहित वाच्यार्थ से अतिरिक्त अर्थ की खोज है।

काव्य के इस केन्द्रगत अर्थ को हम ध्वनि, वक्रोक्ति, अलंकरण कुछ

भी कह सकते हैं। यह परोक्ष अर्थ गर्भता ही भाषा को एक नयी दीप्ति देती है। कभी-कभी कवि अथवा रचनाकार यह अनुभव करने लगता है कि भाषा के मानक शब्दों से वह अपनी बात नहीं कह पा रहा है ऐसी स्थिति में उसे भाषा के मानक शब्दों को छोड़कर अमानक शब्दों की शरण लेनी पड़ती है जो प्रायः प्रचलित या सामान्य बोलचाल की भाषा के होते हैं। जो कविता में प्रयुक्त हो जाने के बाद एक नयी अर्थवत्ता और ताजगी देते हैं। जिसके द्वारा की गयी अभिव्यक्ति अधिक सशक्त और प्रभावी होती है। काव्यभाषा अपने को सामान्य भाषा से अलग करने के लिए क्रमशः वक्रता या विचलन तथा अप्रस्तुतों का सहारा लेती है। कुंतक ने भी इस बात पर जोर दिया है कि सामान्य भाषा की अपेक्षा काव्यभाषा में वक्रता होनी चाहिए।[2] भोज ने शृंगार प्रकाश में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि शास्त्र भाषा तथा लोकभाषा अवक्र होती है तथा कविता की भाषा वक्र होती है।[3] यही अवक्रता अर्थात् सामान्य भाषा ही वह आधार है जिस पर शास्त्रीय भाषा तथा काव्यभाषा आधृत होती है। सामान्य भाषा ही वह मूल भाषा होती है जिसे एक विशिष्ट दशा में विकसित करके कवि अथवा शास्त्रकार उसी भाषा को शास्त्रीय अथवा काव्यभाषा बना देता है।

काव्यभाषा की इस विकसनशील प्रवृत्ति की ओर इंगित करते हुए आचार्य शुक्ल जी कहते हैं कि 'कविता में भाषा की सब शक्तियों से काम लेना पड़ता है, वस्तु या व्यापार की भावना को चटकीली करने और भाषा को अधिक उत्कर्ष पर पहुंचाने के लिए कभी किसी वस्तु का आकार या गुण

बहुत बढ़ाकर दिखाना पड़ता है। कभी उसके रूप रंग या गुण की भावना को उसी प्रकार के और रूप रंग मिलाकर तीव्र करने के लिए समान रूप और धर्मशाली और-और वस्तुओं को सामने लाकर रखना पड़ता है। कभी-कभी बात को घुमा-फिराकर कहना पड़ता है। ------- अलंकार चाहे अप्रस्तुत वस्तु योजना रूप में हों (जैसे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि) चाहे वाक्य वक्रता के रूप में हों, चाहे वर्ण विन्यास वक्रता के रूप में हों वे प्रस्तुत या भावना के उत्कर्ष के लिए प्रयुक्त होते हैं।[४] काव्यभाषा का प्रयोक्ता अर्थचयन इस दृष्टि से करता है कि वह अपनी बात एक दम सीधी कहकर थोड़ा घुमा फिराकर कर कहे इसके लिए वह भाषा की लक्षणा शक्ति तथा प्रतीकों से काम लेता है। `अगोचर बातों या भावनाओं को भी जहां तक हो सकता है कविता स्थल गोचर रूप में रखने का प्रयास करती है। इस मूर्ति विधान के लिए वह भाषा की लक्षणा शक्ति से काम लेती है। जैसे-`समय बीता जाता है, कहने की अपेक्षा समय भागा जाता है' कहना अधिक पसंद करेगी।'[५] सामान्य बोलचाल की भाषा में वाक्य, पद विशेषादि को क्रम में रखा जाता है। कविता की भाषा में यह क्रम सर्वदा वही नहीं होता। वह प्राय: सामान्य क्रम से विचलित अथवा परिवर्तित होता है। यदि उसे फिर से सामान्य क्रम में रख दिया जाये तो उसका सौन्दर्य समाप्त हो जायेगा तथा वह कविता की भाषा नहीं रह जायेगी। यही कारण है कि कविता की भाषा अपने को सामान्य भाषा से अलग करने के लिए क्रमश: वक्रता या विचलन तथा अप्रस्तुत विधान का सहारा लेती है। `काव्यभाषा भाषा का वह रूप है, जो क्रमश: सामान्य

भाषा पर आधारित होता है, किन्तु उसमें सटीक चयन, कल्पना के सहारे विचलन, अप्रस्तुत विधान तथा समानान्तरता आदि के आधार पर इस प्रकार का संयोजन किया जाता है कि भाषा एक ओर तो सामान्य भाषा की तुलना में सर्जनात्मक, आकर्षक एवं जीवंत हो उठती है, दूसरी ओर सामान्य भाषा की अभिधा सीमा का अतिक्रमण कर लक्षणा और व्यंजना के स्तर पर अत्यंत प्रभावी ढंग से भावबोध जाग्रत करने में और साहित्यकार की अनुभूति को उसकी अधिकाधिक निजता के साथ सम्प्रेषित करने में समर्थ हो जाती है।[६] जहां पर सामान्य भाषा सामान्य अनुभवों पर आधारित होती है वहीं पर काव्यभाषा विशिष्ट एवं सर्जनात्मक होती है।

सामान्य बोलचाल की भाषा और काव्यभाषा में अन्तर :

सामान्य बोलचाल की भाषा ही अपने परिनिष्ठित एवं विकसित रूप में काव्यभाषा का रूप ग्रहण कर लेती है तथा काव्य भाषा निरन्तर प्रयोग के कारण अपनी अर्थवत्ता नष्ट कर देती है, तब कवि उन परिनिष्ठित एवं मानक शब्दों से अपनी बात पूरी तरह नहीं कह पाता जिसके लिए उसे अमानक अथवा सामान्य बोलचाल की भाषा के शब्दों का इस्तेमाल करना पड़ता है। जिससे भाषा में एक ताजगी आ जाती है। 'बार-बार पुनरावर्तन से और एक ही प्रकार के पुनरावर्तन से शब्दों की कोर मर जाती है और इतनी जल्दी-जल्दी शब्द अपना जामा बदलने लगते हैं कि उन्हें पहचानना मुश्किल हो जाता है। सही शब्दों की तलाश के लिए इतनी अंधेरी गलियों, इतने कोनों-अंतरों में जाना पड़ता है। ----- कविता बोलचाल की भाषा से ही नहीं,

एकदम मदेसी एवं अन्तरंग, अनगढ़ बोलचाल की भाषा से शब्द लेने के लिए लाचार हो जाती है। इसलिए कि पिछले शब्द कुछ ही समय में आवृत्तियों की संख्या के तथा पहुंच के दायरे के फैलाव के कारण बहुत जल्दी चुक जाते हैं। यही नहीं, जब कभी बात को मोड़कर कुछ बांकी भंगिमा लाने की कोशिश की जाती है तो वह बांकपन दूसरे ही दिन सीधा- सपाट बनकर प्रस्तुत हो जाता है।'[७] तब कवि फिर काव्योपयोगी बनाने के लिए उस वाच्यार्थयुक्त सपाट उक्ति में निहित अर्थ से अतिरिक्त अर्थ भरने का प्रयास करता है। शब्दों में अधिक अर्थ या निहित अर्थ से अतिरिक्त अर्थ पाने की, लालसा ही कवि को भाषा के प्रति विद्रोह करने को जाग्रत करती है और विवश होकर कवि व्यंजना की नवीन प्रणालियाँ को ढूंढता है। व्यंजना भाषा की साधारण अर्थ विधायिनी शक्ति की सहायता करती है। 'यह क्रिया भाषा में निरन्तर होती रहती है और भाषा विकास की एक अनिवार्य क्रिया है। चमत्कार मरता रहता है और चमत्कारिक अर्थ अभिधेय बनता रहता है या यों कहें कि कविता की भाषा निरन्तर गद्य की भाषा हो जाती है। इस प्रकार कवि के सामने हमेशा चमत्कार की सृष्टि की समस्या बनी रहती है। वह शब्दों को नया संस्कार देता चलता है और ये संस्कार प्राय: सार्वजनिक मानस में बैठकर फिर ऐसे हो जाते हैं।'[८] कविता की भाषा में कभी- कभी सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग परिलक्षित होता है तो कभी- कभी ठीक इसके विपरीत अत्यन्त सामान्य लोगों की बोलचाल की भाषा में अलंकरण, प्रतीक एवं बिम्बों का सुन्दर समायोजन देखा जा सकता है। 'बातचीत में भी

जब किसी को अपने कथन द्वारा कोई मार्मिक प्रभाव उत्पन्न करना होता है तो वह इस पद्धति का अवलम्बन करता है, यदि अपनी पत्नी पर अत्याचार करनेवाले किसी व्यक्ति को समझाना है तो वह कहेगा कि-'तुमने इसका हाथ पकड़ा है, यह न कहेगा कि तुमने इसके साथ विवाह किया है।'[६]

कभी-कभी विचलन तथा अप्रस्तुत विधान पर आधारित सामान्य बोलचाल के अत्यन्त अनूठे प्रयोग मिलते हैं। सामान्य बोलचाल की भाषा अपने भाषिक समाज की सम्पत्ति होती है उसे प्राय: सभी अवसर पाकर प्रयोग कर लेते हैं तथा समझ लेते हैं। काव्य भाषा में सामान्य बोलचाल की शब्दावली का प्रयोग तो होता है किन्तु कभी- कभी ऐसी साहित्यिक शब्दावली का भी प्रयोग होता है जो सामान्य बोलचाल की भाषा में नहीं मिलती। सामान्य भाषा, भाषा के केवल उन उपादानों से काम चलाती है जो भाषा में उपलब्ध हैं और प्रचलित हो चुके हैं, किन्तु काव्य भाषा इनसे अधिक से अधिक बचना चाहती है। कल्पना के सहारे हर संभवित स्तर पर नये-नये उपादानों का संधान करती है। 'भाषा और बोलचाल का बनना या बिगड़ना प्राय: कवियों के हाथ में ही रहता है। जिस भाषा के कवि अपनी कविता में बुरे शब्द और बुरे भाव भरते हैं, उस भाषा की उन्नति तो होती नहीं उलटी अवनति हो जाती है।'[१०] ७

काव्यभाषा और सामान्य बोल के इस सम्बंध को इलियट ने बहुत सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि 'कोई भी कविता ठीक-ठीक वही वाणी नहीं हो सकती जिसे कवि बोलता और सुनता है किन्तु

अपने समय की वाणी से उसका ऐसा सम्बन्ध होना चाहिए कि श्रोता या पाठक कह सके यदि मैं कविता में बोलता तो इसी प्रकार बोलता ।[११] कवि समय के अनुसार भाषा को भी अपने अनुरूप ढाल लेता है, चाहे वह बोलचाल की हो या सधी हुई परिष्कृत । प्राय: यह देखा जाता है कि सामान्य बोलचाल की भाषा धीरे-धीरे विकसित होकर एक विशिष्ट भाषा अर्थात् काव्यभाषा बन जाती है और काव्य भाषा धीरे- धीरे बोलचाल की भाषा में चल जाती है । दर असल यह रोचक और महत्वपूर्ण तथ्य है कि यदि एक अर्थ में काव्य-भाषा काव्येतर या सामान्य भाषा का विशिष्ट प्रयोग है, तो दूसरी ओर आनेवाली सामान्य भाषा के बीज या संभवित रूप काव्यभाषा में छिपे रहते हैं और काव्य भाषा के बीज सामान्य बोलचाल की भाषा में । 'यह सर्वथा निर्विवाद है कि काव्य भाषा सामान्य भाषा से उद्भूत है और सामान्य भाषा जो कल आनेवाली है, वह आज की समर्थ काव्य भाषा में मौजूद है ।'[१२]

जहां पर सामान्य बोलचाल की भाषा काव्य भाषा की ओर विकासोन्मुख है वहीं पर काव्य भाषा बोलचाल की ओर अधिक बढ़ना चाहती है,कवितागत भाषा का भावानुकूल अदलने-बदलने का पूरा अधिकार होना ही चाहिए । ज्यों-ज्यों कविता की भाषा अधिकाधिक आम जनता की भाषा बनती चलेगी, उसमें प्रादेशिक शब्द अधिक आयेंगे, और यह इष्ट ही होगा । मगर शब्दों की अभिधा मूला लक्षणा भी की अपेक्षा व्यंजना शक्ति पर मेरी अधिक श्रद्धा है ।[१३]

कालान्तर में निरन्तर प्रयोग से काव्य भाषा के शब्द सामान्य बोलचाल की भाषा के हो जाते हैं और वही शब्द आगे चलकर अपना सामान्य अर्थ छोड़कर किसी अन्यार्थ के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हो जाते हैं। भाषा के रचाव-ढहाव की यह क्रिया अनादिकाल से चली आ रही है। जब पण्डितों की काव्य भाषा स्थिर होकर उत्तरोत्तर आगे बढ़ती हुई लोकभाषा से दूर पड़ जाती है और जनता के हृदय पर प्रभाव डालने की उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है तब शिष्ट समुदाय लोक भाषा का सहारा लेकर अपनी काव्य परम्परा में नया जीवन डालता है।[१४] सामान्य बोलचाल की भाषा के प्रयोग को ध्यान में रखते हुए शुक्ल जी ने यह भी कहा ठकि है कि काव्य या साहित्य की जो भाषा होगी वह ऐसे सामान्य शब्दों को ही व्यवहार में लायेगी जिनका प्रचार दूर-दूर तक होगा।[१५] भावनाओं की सटीक अभिव्यक्ति जितना बोलचाल की भाषा में संभव है उतना कविता की भाषा में नहीं, इसी बात को ध्यान में रखकर भरत मुनि ने प्रतिपादित किया था कि सामान्यतया तो नायक संस्कृत बोलेगा, परन्तु विशेष परिस्थिति में वह प्राकृत बोले।[१६] काव्य भाषा में होने वाली इस क्रान्ति तथा बदलाव का मूल उद्देश्य भी यही है कि काव्य भाषा को लोक के सन्निकट पहुंचना है, इलियट ने तो और आगे बढ़कर लिखा है कि काव्य के क्षेत्र में प्रत्येक क्रान्ति लोकभाषा की ओर प्रत्यागमन के रूप में घोषित हुई है और ऐसा होना भी चाहिए।[१७] काव्य भाषा और सामान्य बोलचाल की भाषा में मौलिक अन्तर यह है कि जब काव्यभाषा की प्रवृत्ति स्थिरीकरण की होती है तब सामान्य बोलचाल की भाषा की प्रवृत्ति विकासमान होती है और तब काव्य भाषा का एक प्रतिमानस सा बन जाता है जिससे कवियों का क हटना एक कठिन कार्य होता है

और आगे चलकर सामान्य बोलचाल की भाषा से काव्य भाषा पीछे छूट जाती है । जब दोनों का सम्पर्क बिल्कुल छूट जाता है तब काव्य भाषा के प्रयोग को लेकर एक ~~क्र~~ क्रान्ति उठती है, भारतीय साहित्य के इतिहास में इस प्रकार कितनी क्रान्तियां देखी गयी हैं । जब वैदिक संस्कृत को अपदस्थ कर संस्कृत, और संस्कृत को अपदस्त कर पालि, प्राकृत और अपभ्रंश तथा इन्हें अपदस्थ कर ब्रज और अवधी आदि विभिन्न भाषाएं आगे आयीं और बाद में इससे भी आगे खड़ी बोली का विकास हुआ । यह एक प्रकार की भाषिक क्रान्ति ही थी । खड़ी बोली, काव्य भाषा के आरम्भिक दौर में सीधी, सरल, तथा सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग मिलता है । जब कि छायावादी काव्य भाषा अधिक विकसित होने के कारण एक विशिष्ट भाषा है जो द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता से इतर स्थूलता से भिन्न सूक्ष्म तथा समृद्ध है । यह भाषा अधिक लाक्षणिक, प्रतीकात्मक तथा अधिक चित्तात्मक होने के साथ-साथ कसी हुई संगीतात्मक अधिक है । प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी की रचनाओं में भाषा मानवमन की सूक्ष्म अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में समर्थ हुई है, किन्तु सारे सामर्थ्य के बावजूद छायावादी काव्य भाषा पर अस्पष्टता और कृत्रिमता का आरोप लगाया गया । परन्तु यह सच है कि उसका रिश्ता बोलचाल की भाषा से कुछ टूटता हुआ सा लगता है और जहां पर पंत और निराला जैसे कवियों ने बोलचाल की भाषा को प्राधान्य दिया वहीं पर वे विशिष्ट छायावादी काव्य भाषा से पृथक दिखायी देते हैं । जिस सपाट बयानी पर आज का कवि जोर दे रहा है उसे निराला ने बहुत पहले स्वीकार

कर लिया था । प्रगतिवादी कवि छायावादी भावभूमि के विरोधी थे । उनकी इस बदलती विचार धारा के अनुरूप काव्य भाषा में भी बदलाव आया । वे कोमल, मनोरम और रंगीन शब्दावली तथा छायावादी काव्य भाषा से हटकर सामान्य बोलचाल की भाषा की ओर आगे बढ़े । छायावादोत्तर कवियों द्वारा जैसे- जैसे भावों को जन-साधारण के निकट लाया गया वैसे-वैसे इनकी भाषा भी बोलचाल के निकट आती गयी और बोलचाल से युक्त काव्य भाषा अर्थ की दोहरी दीप्ति देने लगी ।

"लोकयथार्थ की सोंधी, सरस, सुरीली धरती और उसके भीतर अपार अबाध सर्जना शक्ति से मचलते हुए शब्दों और जनबोलों का चयन उसे अर्थ की दोहरी दीप्ति देता है ।[२८] तार सप्तक के कवियों मुख्यत: अज्ञेय ने छायावादी काव्य भाषा को अपर्याप्त मानकर छायावाद की विशिष्ट एवं संस्कृत शब्दावली के स्थान पर सामान्य बोलचाल की भाषा को महत्व दिया । आगे चलकर नयी कविता की भाषा में शब्दों के नवीन प्रयोग हुए जिसमें राजनीतिक शब्दावली की प्रमुखता देखी जा सकती है । इन कवियों द्वारा बोलचाल की भाषा को काव्य भाषा बनाये जाने का अर्थ जीवन यथार्थ को काव्यानुभव का विषय बनाना है । जीवन के हर स्पंदन को जो भाषा साक्षात्कार करेगी वह जीवन के उतार- चढ़ाव को व्यक्त कर सकेगी । ऐसी यथार्थ भाषा सीधी एवं सपाट होते हुए भी अभिधार्थ तक ही सीमित नहीं रहेगी । बल्कि उसे आगे ले जायेगी अर्थात् विकास की ओर बढ़ेगी जो बोलचाल की भाषा से विशिष्ट और सम्पन्न होगी । क्योंकि रचनाकार उनमें प्रतीकों और बिम्बों की सहायता से अपनी व्यक्तिगत तथा विशिष्ट अनुभूतियों को अभिव्यक्त करेगा । रघुवीर सहाय की कविताओं का उद्धरण देते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं ।

'कविता की भाषा को सही अर्थ में बोलचाल और अखबार की भाषा से सम्बद्ध करने में वर्णन और बिम्ब का अन्तर डूब जाए यह स्वाभाविक है । इस प्रक्रिया में सामान्य भाषा की रचनात्मक क्षमता का बिलकुल नया और प्रतिकर अहसास कवि के नए संकलन 'आत्महत्या के विरुद्ध' की कविताओं में होता है ।'[९६] यही नहीं अज्ञेय, सर्वेश्वर, जगूड़ी तथा धूमिल की भाषा भी बोलचाल की वह भाषा है जो देखने में निहायत सरल होते हुए भी जीवन के जटिल यथार्थ को व्यक्त करती है । नयी कविता की भाषा की काव्य भाषा के स्तर पर एक सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही ह कि उसने बोलचाल की भाषा को बिम्ब में संक्रमित किया तथा मुहावरों और पहेलियों को एक नयी अर्थवत्ता दी । नयी भाषा के निर्माण की प्रक्रिया में नये कवियों को अमूर्तन और प्रतीकन की क्रिया बरबस अपनानी पड़ती है तथा अमूर्तन और प्रतीकन की प्रक्रिया शब्द के सम्पूर्ण अर्थ से हटकर विशिष्ट संकेत पर आश्रित होकर जो भावचित्र बनाती है वह काव्य भाषा का सही रूप होता है ।

काव्य और शास्त्र :

कविता अथवा काव्य की कोई एक निश्चित परिभाषा नहीं मिलती । कविता को परिभाषित करनेवाले जो परम्परागत प्रतिमान मिलते हैं, उनमें एक तो काव्यशास्त्रोपस्कृत प्रतिमान तथा दूसरा कतिपय स्वतन्त्र रू परिभाषाएं मिलती हैं, जिनके माध्यम से स्वतंत्र रूप में कविता को परिभाषित किया गया है । काव्यशास्त्रोपस्कृत प्रतिमान काव्य में रस, ध्वनि, अलंकार, क वक्रोक्ति, रीति, औचित्य, शब्दशक्ति तथा छंद, लय गुण इत्यादि को आवश्यक मानता है । इस परिभाषा प्रक्रिया में शिल्प,

शैली, स्थापत्य, शब्दार्थ तत्व इत्यादि का भी उल्लेख किया जा सकता है। काव्य शब्द ऋग्वेद में एक ऐसी शब्दनीय वाणी के लिए प्रयुक्त हुआ है जो स्तुत्यात्मक हो तथा मधुर हो।[20] ऋग्वेद भाष्य में काव्य को तीन अर्थों में लिया गया है - (क) कवियों अर्थात् मेधावियों का कर्म या कौशल। (ख) कवि सम्बंधी (ग) शब्दनीय वाणी।[21] इसमें तीसरा विवेचन बड़ा ही महत्वपूर्ण है। 'कु' उपरान्त धातु जिसमें अवश्य कृदन्त रूप से 'काव्य' बनता है -- अवश्यं कवनीयं काव्यम्' अर्थात् जिसकी शब्दमयी अभिव्यक्ति अनिवार्य हो उठे वह काव्य है।[22] कविता की सर्जना करते समय कवि पहले शब्द की सृष्टि करता है या अर्थ की ? यह समस्या चिरंतन काल से काव्य शास्त्रियों के समक्ष विद्यमान रही है। कुछ काव्य शास्त्रियों ने शब्दार्थ युगल को काव्य मानकर इस समस्या का समाधान करने का प्रयास किया।[23] पंडित राज जगन्नाथ ने इस बात पर आपत्ति प्रकट की कि एक ही साथ शब्द और अर्थ दोनों व्यापारों की क्रिया कारिता संभव नहीं हो सकती, इस रमणीयार्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द ही काव्य है।[24] कवि के द्वारा निगुस्यमान शब्द में निहित अर्थ सौरस्य ही रमणीयार्थ का प्रतिपादन करता है। रमणीयता शब्द की अर्थसत्ता की ही पकड़ से आती है। 'काव्य सबसे पहले शब्द है और अन्त में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। जो कवि शब्द के संसार के प्रति सजग नहीं है वह अर्थवान शब्द का साधक नहीं है और मैं कहूंगा कि वह कवि नहीं है, न होगा।[25] जिस कवि की शब्द चेतना प्रबुद्ध है वही कविता को नयी अर्थवत्ता दे सकता है। कवि में उन शब्दों को पहचानने की तीक्ष्ण प्रज्ञा होती है, जो उसकी अनुभूति के अनुरूप होते हैं। शब्द का ज्ञान, शब्द की अर्थसत्ता की सही पकड़ ही कृतिकार को कृती बनाती है। परन्तु इस तथ्य को प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से सभी ने स्वीकार किया है कि काव्य शब्द और अर्थ दोनों से

दीप्त है। कवि की सर्जक प्रतिभा शब्द में फूटती है और अर्थ में अभिव्यक्त होती है। शब्द मन से फूटता है और अर्थ का भावदर्शन भी मन से ही फूटता है, क्योंकि सृष्टि के समस्त अर्थजात का संस्पर्श मन को ही है, वह फूटनेवाली शब्दनीय वाणी भी मन में समायी हुई है। भामह के पूर्व भी एक ऐसा सम्प्रदाय था जो काव्य को शब्द की सर्जना मानता था। अर्थात् काव्य की संज्ञा 'सौशब्द्य' थी, 'सौशब्द्य' अर्थात् शब्दों का सुष्ठु प्रयोग एवं उचित संग्रथन।[२६] जब शब्दों को इस प्रकार चुना और व्यवस्थित किया जाता है तो उनका अर्थ सौन्दर्यात्मिक कल्पना जाग्रत करता है। या ऐसा करने के लिए उद्दिष्ट होता है, तब उसे काव्यात्मक पद शय्या (पोयटिक-डिक्शन) कहते हैं।[२७] ध्वनिकार ने इस काव्यात्मक शब्द और उससे व्यक्त होने वाले अर्थ के सम्बंध में कहा है कि कविता अथवा काव्य की वह अर्थवस्तु और उसे व्यक्त करने वाले शब्द कोई अत्यन्त विरल ही होते हैं, महाकवियों को इन शब्दार्थों की पहचान प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए।[२८] कुंतक ने आनन्दवर्द्धन की अपेक्षा काव्य के कारणभूत तीन मार्गों का उल्लेख किया है जो काव्य रचना प्रक्रिया के तीन स्तर हैं। सुकुमार मार्ग की चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि 'सत्कवियों ने जिस स्थिति में रचना की है उनका यह सुकुमार नामक मार्ग है जिसके नव-नव शब्द और अर्थ अम्लान प्रतिभा से सहज फूट पड़ते हैं, अनायास ही आए हुए स्वल्प उक्ति वैचित्र्य जिसे अलंकृत करते हैं उसमें एक अज्ञात सौन्दर्य समाया रहता है, जो भी वैचित्र्य संभव हो सकता है वह सुकुमार भाव से तरंगित होता हुआ इसमें ~~निझ~~ निर्झर की तरह फूटता है जैसे फूले हुए कुसुम-वन में भौंरे अपने आप प्रवृत्त होकर रस संचयन करते हैं वैसे ही आम्लान प्रतिभा से युक्त सत्कवियों की वाणी स्वत: फूटती है।[२९] विचित्र मार्ग की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा है कि

जिसमें काव्य प्रतिभा का पहला ही उद्गार शब्द अर्थ के बीच झाँकती हुई वक्रता को लेकर प्रकट होता है, और उसमें एक ही अलंकार से संतुष्ट न होकर कवि अलंकार के लिए दूसरे अलंकार की उद्भावना करता है। इस प्रकार के उद्भावित अर्थ को चमत्कृत करने वाले अनेक अलंकारों से युक्त काव्य वस्तु अपनी ही घनीभूत शोभा के स्तरों में लीन होकर जहाँ स्वयमेव अपने आह्लादक रूप से प्रकट होती है उस विचित्र मार्ग में कवि- प्रतिभा का प्रयोग अन्यथा या त्याज्य वस्तु को भी अपनी वाणी में निबद्ध कर लोकोत्तर सौन्दर्य से युक्त कर देता है। यह विचित्र मार्ग सभी सभी कवियों के लिए गम्य नहीं है जैसे सुभटों का मनोरथ तलवार की धार पर चलता है वैसे ही वाणी प्रयोग के अत्यन्त विदग्ध कवि ही इस विचित्र मार्ग की काव्य रचना में प्रवृत्त होते हैं।[30] दण्डी ने वाँगमय का द्विधा, विभाजन स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति के रूप में किया था।[31] उसी स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति को कुंतक ने सुकुमार और विचित्र मार्ग के रूप में प्रस्तुत किया। मध्यम मार्ग सुकुमार और विचित्र का मिला जुला रूप होता है। कुंतक के इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि महान कवियों की रचना में विश्व के पदार्थ अपनी ही स्वभाव में बिना वाणी की अपेक्षा रखे सहज वाणी में प्रकट होकर रूपायित करते हैं। अभिधावादी भट्ट नायक ने काव्य रचना को व्यापार माना है। उनके अनुसार काव्य प्रथमत: मनो व्यापार है उसके बाद शब्द शक्तियों का निदर्शन हुआ। काव्य के जीवन को मनुष्य के जीवन और आत्मा से उपमित करना सर्वथा अनुचित है जैसे मनुष्य का शरीर और उसकी आत्मा ये दो पक्ष हैं वैसे ही काव्य की भाषा और उसके अर्थ का तथा उसकी आत्मा का सम्बंध है।

'जहां केवल शब्द ही प्रधान है वह पृथक शास्त्र वेदादि हैं, और जहां अर्थ की प्रधानता है वहां इतिहास आख्यानादि हैं। पर जहां केवल व्यापार या क्रिया तत्परता ही मुख्य है, शब्द अर्थ उसके अंग मात्र हैं वहां काव्य की रचना सम्पन्न होती है।[32] विभिन्न मतों से यह सिद्ध हो जाता है कि शब्द और अर्थ का एक सम्बन्ध होता है इस सम्बन्ध के द्वारा ही प्रत्येक शब्द अपना अर्थ सम्प्रेषित करता है। शब्द अर्थ का सम्बंध ही शब्द को शक्ति देता है। 'शब्द मूलतः किसी मूर्त वस्तु अथवा स्थिति के संकेत भर हैं, इस प्रकार सारी भाषा अमूर्तन और प्रतीकन की क्रिया है।[33] प्रसाद जी ने काव्य भाषा में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध पर विचार किया है उन्होंने यह स्पष्ट करते हुए कहा है कि काव्य के प्रसंग के अन्तर से शब्दों के अर्थ में अन्तर उपस्थित होता है। काव्य भाषा में पर्यायवाची शब्दों से काम नहीं चलता क्योंकि वहां एक शब्द एक विशेष अर्थ के प्रेषण का माध्यम बनता है। शब्द और अर्थ के सम्बंध की यह वैज्ञानिकता काव्य-भाषा में सौन्दर्यपूर्ण आकर्षण उत्पन्न करती है। 'शब्द और अर्थ की यह स्वाभाविक वक्रता विच्छित्ति छाया और कान्ति का सृजन करती है।[34] प्रसाद जी का यह मत कुंतक के विचित्र मार्ग के सन्निकट है। पंत जी कविता में शब्दों के पारस्परिक सम्बंध का दायित्व राग पर देते हैं। शब्दों की ध्वनि से एक चित्र खड़ा होता है और उससे अर्थ का सम्प्रेषण आसान हो जाता है। परन्तु शब्दों का पारस्परिक सम्बंध उनके अर्थ पर तथा अर्थ प्रसंग पर निर्भर करता है। राग को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि-'राग का अर्थ आकर्षण है, यह वह शक्ति है जिनके विद्युत्स्पर्श से खिंचकर हम शब्दों की आत्मा तक पहुंचते हैं, हमारा हृदय उसके हृदय में पहुंचकर एक भाव हो

जाता है ।[35] आगे शब्द अर्थ के सम्बंध पर विचार करते हुए उन्होंने कहा है कि 'कविता में शब्द तथा अर्थ की अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती, वे दोनों भाव की अभिव्यक्ति में डूब जाते हैं । तथा भिन्न आकारों में कटी-छंटी शब्दों की शिलाओं का अस्तित्व ही नहीं मिलता । राग के लोप से उनकी संधियां साकार हो जाती हैं ।[36] अत: यह स्वयं सिद्ध हो जाता है कि शब्द या शब्दों की ध्वनियों में होनेवाली तरंग अवश्य ही कविता को उतना प्रभावित नहीं करती जितना कि शब्दों का आपसी या समानुपातिक सम्बन्ध । भारतीय चिन्तन में तो शब्द और अर्थ एक ही आत्मा के भेद कहे गये हैं ।[37] पाश्चात्य विचारकों ने भी यह अनुभव किया है कि शब्दों के प्रतिमानों के वैज्ञानिक रूझान में जो परिवर्तन होता है वह वस्तुत: अर्थ का ही परिवर्तन होता है । कविता की परिभाषा निबद्ध करते समय पाश्चात्य चिन्तकों ने काव्य शास्त्र की सीमा से अपने को नहीं बांधा । पाश्चात्य समीक्षाओं पर समाजशास्त्र, कला, मनोविज्ञान, विज्ञान, दर्शन, सौन्दर्य शास्त्र, राजनीति, भाषा शास्त्र, इत्यादि का प्रभाव काव्यशास्त्र से अधिक है । वस्तुत: कविता को किसी परिभाषा विशेष में बांधा नहीं जा सकता । कालान्तर में पारिभाषिक प्रतिमानों में भी परिवर्तन होता चलता है ।

काव्य तत्वों अथवा भाषा की शक्तियों का जिस शास्त्र के माध्यम से विवेचन-विश्लेषण किया जाता है उसे काव्य शास्त्र कहते हैं । ध्वनि, रीति,वक्रोक्ति, अलंकरण, बिम्ब, प्रतीक, औचित्य तथा शब्द शक्तियों की जो चर्चा काव्य के निकष के रूप में हुई है वह काव्यशास्त्र का ही विषय है और मूल भूत तत्व भी । काव्य के केन्द्रगत अर्थ विवेचन के बाद शास्त्र के

विषय में भी जानना आवश्यक हो जाता है। शास्त्र शब्द की व्युत्पत्ति 'शास्' धातु से मानी जाती है। जिसका व्यु-पत्ति मूलक अर्थ है शासन करना। अमरकोश में निर्देश ग्रन्थ कर्म- को शास्त्र कहा गया है।[३८] शास्त्र जीवन के सम्बंध में अथवा जीवन की किसी भी विशिष्ट गति के सम्बंध में निर्देश देता है।[३९] आचार्य दण्डी के अनुसार 'शास्त्र न जानने वाला मनुष्य गुणों और दोषों का सम्यक् विभाजन कैसे कर सकता है? क्या नेत्र हीन व्यक्ति में रूप के विविध प्रकारों-लाल, पीला, हरा को पहचानने की शक्ति होती है? गुणों और दोषों के सम्यक् विवेचन के लिए काव्य शास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। शास्त्र का उद्देश्य विभिन्न क्षेत्र के जिज्ञासुओं की व्यु-पत्ति है।[४०] ज्ञान के विविध क्षेत्रों में शास्त्र की रचना हुई है तथा अपने क्षेत्र अथवा विषय के नाम पर उक्त शास्त्र का नामकरण हुआ है।[४१]

क काव्यशास्त्र का अर्थ :

जिस प्रकार भाषा शास्त्र के अन्तर्गत भाषा के अवयवों और उसके तत्वों लिंग, वचन, क्रिया, विशेषण, अव्यय, कारक, वर्ण, पद, आदि का विवेचन विश्लेषण किया जाता है। ठीक उसी प्रकार काव्य शास्त्र के अन्तर्गत काव्य के मूल तत्वों अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति, रस आदि का विवेचन विश्लेषण किया जाता है। काव्य शास्त्र का मर्मज्ञ काव्य की अतल गहराई में प्रविष्ट होकर उन तत्वों की खोज करता है जो काव्य कृति को आनन्ददायी एवं मजबूत बनाने में सहायक होते हैं। भाषा शास्त्र में भाषा का व्याकरणिक अध्ययन भर किया जाता है। भाषाशास्त्री भाषा को शुद्ध एवं परिमार्जित करने का प्रयास करता है। परन्तु काव्यशास्त्री

भाषा के गर्भ में छिपे उस रोचक और चटकीले पन की तलाश करता है। भाषा की उस लोकरंजक शक्ति को ढूंढ निकालता है जो सहृदयों को हंसाने और रूलाने का कार्य करती हैं। वस्तुत: काव्यशास्त्र वह विधा है जो काव्य के सम्बंध में बौद्धिक विवेचन करती है। काव्य सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान सिद्धान्तों तथा काव्य की व्याख्या का कलेवर निर्मित करती है। काव्य शास्त्र द्वारा काव्य के सत्य की खोज की जाती है, काव्य के स्वरूप का अनुसंधान किया जाता है तथा उसके आत्म तत्व का शोध एवं स्थापन किया जाता है, काव्य के मर्म को टटोला जाता है। डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार, 'काव्य के स्वरूप और उसकी समस्याओं पर विचार करने वाले विषय को काव्य शास्त्र कहना ही विशेष उचित है।'[४२]

काव्यशास्त्र मानव मन की अभिव्यक्ति का तथा काव्य सम्बन्धी जिज्ञासाओं का समाधान शास्त्र है। परख और विश्लेषण प्रत्यैक व्यक्ति की बुद्धि का स्वभाव है। कोई भी व्यक्ति किसी की बात को उसी रूप में स्वीकारने को राजी नहीं होता चाहे वह कवि हो, चाहे आलोचक हो, उस व्यक्ति की कही हुई बात को पहले आत्मसात करता है और फिर गम्भीर चिन्तन करके उसकी अपने ढंग से व्याख्या करता है। इस प्रकार शास्त्र बौद्धिक शक्ति का प्रयोगात्मक रूप है जिसके द्वारा काव्य के स्वरूप और उसके गठन पर विचार किया जाता है। तब काव्यशास्त्र का जन्म होता है।

डा० भगवान दास के अनुसार- 'जिस शास्त्र में काव्य का तत्व, रहस्य, मर्म, मूलरूप, तथा उसके अवान्तर अंग सब मूल रूप में जान पड़ें जिससे कविता के गुण दोष विवेचन की शक्ति जागृत हो, अच्छी कविता करने में सहायता

मिले वह साहित्य शास्त्र है ।[४३] वस्तुत: कवि अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के बल से काव्य की सृष्टि करता है परन्तु कवि की इस सर्जनात्मक प्रतिभा को नियमों में नहीं बांधा जा सकता । और न ही उसके जन्म जात प्रतिभ सौन्दर्य को सिद्धान्तों में तौला जा सकता है इसीलिए कवि को ब्रह्म का अपार अभिधान घोषित किया गया है ।[४४] और इसीलिए निरंकुश: कवय: कहकर कवि को स्वतन्त्र सत्ता प्रदान की गयी है । कवि की वाणी के अस्त्र प्रवाह को भला जड़ नियमों में कैसे बांधा जा सकता है । कवि की वाणी तो गंगा और यमुना की तरह निर्बाध है । वह अपने आप ही अपना मार्ग बनाती है । काव्यशास्त्र कविता की देखभाल इस अर्थ में करता है कि कविता कहीं अनावश्यक शब्दों से बोझिल न हो जाय जिससे वह चमत्कारिक अर्थ खो बैठे । काव्य शास्त्र काव्य के स्वरूप एवं सौन्दर्य का तथा उसकी सर्जनात्मक प्रक्रिया का विवेचन-विश्लेषण करता है ।कविता में तरलता, नवीनता एवं रमणीयता की मिली जुली अनुभूति ही अलौकिक आनन्द का साक्षात्कार कराती है । भोक्ता अर्थात् आलोचक इसी सरसता, कोमलता, एवं रमणीयता को भोगता है । इसी विशुद्ध काव्यानन्द के भोग से वह प्रत्येक काव्य में इन्हीं तत्वों को ढूंढ़ने का प्रयास करता है । इन्हीं तत्वों की चर्वणा एवं चिन्तन के फलस्वरूप काव्य को परखने का एक अंदाजा मिलता है । और इसे चिन्तन, मनन तथा तर्क के द्वारा परखा जाता है । और यही चिन्तन ,मनन और तर्क के साथ समुचित रूप में परखने की ईमानदारी काव्य शास्त्र का अभिधान कहलाती है ।

निष्कर्ष :

अत: काव्य शास्त्र काव्य सत्य की खोज करता है, उसके स्वरूप का अनुसंधान करता है, तथा उसके आत्म तत्व की शोधपूर्वक स्थापना करता है ।

इस प्रक्रिया में कुछ सिद्धान्तों की स्थापना कुछ सम्प्रदायों का उदय, एवं काव्य की भेदोपभेद सम्बन्धी परिगणनाएं भी हो जाती हैं। वास्तव में उपरोक्त सभी तत्व एक ही मार्ग की मंजिलें हैं, इन्हीं मंजिलों से होता हुआ काव्य शास्त्र अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति करता है। जिस प्रकार कविता का जीवन से अटूट सम्बन्ध है, ठीक उसी प्रकार काव्य का काव्य शास्त्र से। जिस प्रकार से कविता जीवन से के विविध सन्दर्भों की व्याख्या करती है, टूटते हुए मानव जीवन को अभिव्यंजना के कोमल तंतुओं में बांधने का प्रयास करती है। ठीक उसी प्रकार काव्य शास्त्र भी कविता को इस अर्थ में बांधने का प्रयास करता है कि कविता कहीं जीवन से टूटकर अलग न हो जाय -

'काव्येन हन्यते शास्त्रं काव्यं गीतेन हन्यते।
गीतं नारि विलासेन क्षुधया सो पि हन्यते।।

अर्थात् शास्त्र काव्य से पराजित हो जाता है, काव्य गीत से पराजित हो जाता है, नारी विलास से, गीत पराजित हो जाता है और पुनः नारी विलास क्षुधा से पराजित हो जाता है।

नये काव्यशास्त्र की संभावना

अद्यतन हिन्दी साहित्य में नयी कविता, नयी कहानी, नयी ग्रहणशीलता नये भावबोध तथा नव-निर्माण की क्रान्ति का बोलबाला है । नये कवियों का यह दावा है कि उनकी कृतियों का ईमानदारी के साथ मूल्यांकन होना चाहिए । आलोचक इन नये कवियों के साथ तभी न्याय कर सकेगा जब इन नयी कृतियों को सही तौर पर समझा हो, उस वातावरण और परिवेश का अध्ययन किया हो जिसमें यह नयी कृतियां लिखी जा रही हैं । क्या नयी कविता में सचमुच हमारे जीवन की छाप है ? उसकी धड़कन हमारी धड़कन है । उसके रक्त का रिश्ता मेरे रक्त से है । मेरे घायल जीवन की समस्त अनुभूतियां एवं संवेदनाएं उसमें अभिव्यक्त हुई हैं । जब तक हमारी दृष्टि रचनाकाल की उस नयी दिशा की ओर नहीं जाती तब तक हम उसे नई दृष्टि नहीं दे सकते, और नहीं उसकी सच्चाई और ईमानदारी की सही कदर करने में समर्थ हो सकते हैं ।[४५] व्यक्ति जीवन और साहित्य में जिन मूल्यों की स्थापना करता है, वे जीवन्त और पूर्ण नहीं होते । क्योंकि इन मूल्यों की स्थापना करनेवाला व्यक्ति ही टिकाऊ नहीं है तो उसके द्वारा बनाये गये मापदण्ड के नियम ही कैसे शाश्वत और सार्वभौमिक हो सकते हैं । प्रत्येक व्यक्ति में विभिन्नता होती है, प्रत्येक देश में विभिन्नता होती है । प्रत्येक देश की भाषा अलग-अलग है इसलिए प्रत्येक देश का काव्य एक ही कोटि का नहीं हो सकता और नहीं उसका काव्य शास्त्र ही । हम जो जीवन जी रहे हैं, हमारे विचार, हमारी दृष्टियां, हमारी मान्यताएं अमेरिका, इंग्लैण्ड की नहीं हैं । हमारी कविता हमारे दर्द से उत्पन्न हुई है और उनकी कविता उनके दर्द से । यह श बात सही है हमारे कवियों ने उनका अनुकरण करने का प्रयास किया है परन्तु हमारी कविता हमारी गर्मी की उपज है । उसे अभिव्यक्ति हमारी धरती पर मिली है । हमारे जीवन का पूरा रहस्य उसके साथ है । हमारे देश में कलात्मक सौन्दर्य का जो

मानदण्ड है वह अमेरिका और इंग्लैण्ड में नहीं है।

प्रत्येक युग नई परम्परा और नई परिपाटी को जन्म देता है। प्रत्येक प्रयोग कविता को नवता की पंगति में बिठाता है। यही कारण है कि जब परम्परा निर्जीव एवं डल हो जाती है तो उसकी विकसनशील प्रवृत्तियां भी दब जाती हैं। और फिर प्रत्येक प्रयोग नई परम्परा को जन्म देता है। जब हम नयी कविता का सही माने में मूल्यांकन करें तो साफ जाहिर हो जाता है कि आज की वैज्ञानिक औद्योगिक प्रगति ने उसे किस हद तक प्रभावित किया है। उसकी सारी प्रवृत्तियां एवं मान्यताएं बदल गयी हैं। दृष्टियां बदल गयी हैं। पैमाने बदल गये हैं। उसने ईश्वर से अलग होकर मनुष्य को तथा उसके विवेक को स्वतन्त्र रूप से महत्व दिया है। संयुक्त परिवारों में विघटन, पारिवारिक रिश्तों में टूटन, मनुष्य तनाव एवं संघर्ष में उलझ रहा है। उसकी मन:स्थिति प्रश्नानुकूल मन:स्थिति है। वह अजनवी है, संशयग्रस्त है उसका व्यक्तित्व खण्डित व्यक्तित्व है। वह अपने पारिवारिक झंझटों में उलझा हुआ है। सुख, शान्ति के बजाय वह असन्तोष, घुटन एवं संत्रास के जंगल में भ भ भटक रहा है। वह संवेदना हीन ऊबा हुआ कटी पतंग की तरह भीड़ में खो गया है। पूंछ कटे हुए जानवर की तरह तिल-मिला रहा है। जब तक आलोचक इन विसंगतियों का अध्ययन नहीं करता। कवि की अभिव्यक्ति में डूबकर उसके अन्दर छिपी हुई आग का पता नहीं लगाता तब तक वह कवि की धड़कन को नहीं पहचान सकता। झूठा इल्जाम लगाने के सिवा सही न्याय नहीं दे सकता। कवि की हिचकियां उसकी कविता में किस रूप में आयी हैं, आलोचक जब तक उसके नये बोध, नये मुहावरे और नई टेकनीक से परिचित नहीं है, तब तक वह उसका सही मूल्यांकन नहीं कर सकता।

दरअसल आज की कविता में जो गतिमयता और बिखराव है उसके

लिए कोई चालू सिद्धान्त या नुस्खा नहीं ढूंढा जा सकता । कविता का तत्व और उसका मर्म वही रहता है, आधार वही रहता है परन्तु उसके कथन के ढंग में नवता आ जाती है, मुहावरे बदल जाते हैं । इस नये मुहावरे का प्रयोग कवि नई मानसिकता के कारण करता है । उसकी मानसिकता उसकी भाषा में गुंथी होती है । भाषा के जरिए कवि की गहराई और उसकी मानसिकता को आंका जा सकता है । उदाहरण के तौर पर तुलसी और सूर के पैमाने पर राजकमल चौधरी और धूमिल को नहीं आंका जा सकता । दोनों की भावभूमि और भाषा एवं काव्य में जमीन आसमान का अन्तर है। जिन काव्य शास्त्रीय परिबलों रस, ध्वनि, वक्रोक्ति एवं अलंकार द्वारा तुलसी के काव्य को परखा जा सकता है वे उपादान और पैमाने नयी कविता के कवियों के लिए उथले साबित होंगे । क्योंकि जो काव्यादर्श पहले थे अब वे आज नहीं रहे । जो आलोचक अपने युग की धड़कन से अपरिचित होता है वह पुरानी रचनाओं की संकीर्ण एवं साम्प्रदायिक व्याख्या करता है । किसी भी नई रचना को परखने के लिए पुराना क्लासिकी पैमाना काम नहीं दे सकता । आज के कवि का उद्देश्य साहित्य के नाम पर कूड़ा-करकट, चमक-दमक, फैशन, अनुकरण एवं बाजारू साहित्य के बीच में विशुद्ध रचनात्मक साहित्य को आगे लाना है । हमें यह विचार करना है कि वह कौन सा मौलिक तथ्य है जिसे आलोचक अपनी कसौटी के रूप में इस्तेमाल कर सकता है । आज के युग में कविता की प्रवृत्ति को देखते हुए यह तो किसी भी स्थिति में नहीं कहा जा सकता कि आज की कविता स्वान्त: सुखाय है । क्योंकि यदि ऐसा होता तो उसके प्रकाशन का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता । आज की कविता का सामाजिक दायित्व है । उसकी कीमत तभी आंकी जा सकती है जब वह अनास्था, घुटन, संत्रास ऊब और उदासी तथा आज के टूटते हुए जीवन के बीच से एक शक्ति दे । नयी कविता के कवियों ने बार-बार दुहराया है कि उनकी कविता का मूल्यांकन

प्राचीन काव्यशास्त्रीय मानदण्डों के आधार पर नहीं किया जा सकता। इसका यही कारण है कि प्राचीन काव्यशास्त्रीय मानदण्ड पर नयी कविता खरी नहीं उतरती। 'हां, इस आधुनिक बोध को काव्यशास्त्रीय चौखटे में 'फिट' करने में दिक्कत होती है और यदि कोशिश भी की जाये तो यह शास्त्र छोटा पड़ जायेगा या फिर चौखटा ही टूट जायेगा।[४६]

नयी कविता के कवियों ने रस की अवमानना करते हुए इस बात की पुष्टि की जब आज के व्यक्ति का व्यक्तित्व खण्डित व्यक्तित्व है। भागदौड़ तनाव-संघर्ष और झुंफलाहट की स्थिति में कटी हुई पतंग की तरह उलझ रहा है। आर्थिक संकटों से जूझ रहा है। आनन्द की जगह मिचलाई की अनुभूति है। जब सम्पूर्ण जीवन ही नीरस है तब रसानुभूति कैसी ? ऐसी स्थिति में नयी कविता में रस का ढूंढना विधवा के ललाट में बिंदिया का ढूंढना है। क्योंकि रसानुभूति तब होती है जब विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भाव का समुचित संयोजन हो। नयी कविता की कटी-छंटी पंक्तियां इतने बड़े महत्वपूर्ण फलक निभाने में असमर्थ प्रतीत होती है। इस प्रकार नयी कविता के कवियों ने रस-सिद्धान्त की पूरी छीछा-लैदर की-

'नाट्यशास्त्र के नये संस्करण में
संयोग का अर्थ है - बलात्कार
वियोग : मनीआर्डर के लिए
डाकिए की कूक का इंतजार
करुणा का आत्मघात
वात्सल्य का गर्भपात
और भक्ति का पेटपूजा[४७]

नयी कविता के प्रवर्तक डा० जगदीश गुप्त ने `बुद्धिरस` की बात कहकर काव्य-शास्त्र के अन्तर्गत एक नये रस की संभावना की।[४८] डा० वीरेन्द्र सिंह ने नये प्रतिमान के रूप में काव्यशास्त्र के परिबलों के माध्यम से नई दृष्टि दी। `इस दृष्टि से वक्रोक्ति, ध्वनि और रस के उन्हीं तत्त्वों को `नया सौन्दर्य शास्त्र` ग्रहण करता है जो विचार की रचनात्मकता और उसके परिवेश जन्य मूल्यों को गति दे सके। ध्वनि की शब्द शक्तियां (सांकेतिकता) रस का लौकिक एवं सामाजिक पक्ष और वक्रोक्ति की सहजता नये सौन्दर्य शास्त्र को मान्य है।[४९] डा० गुप्त के अनुसार `रस एक विशेष मन:स्थिति में विशेष प्रक्रिया से निष्पन्न होता है। युग के कवि की दृष्टि रस निष्पत्ति की ओर नहीं जाती और अधिकांश नयी कविता का लक्ष्य रसानुभूति करना नहीं है, ऐसा मुझे लगता है।[५०] गुप्त जी के इस मत से साफ जाहिर है कि नयी कविता का रस-सिद्धान्त से कोई सरोकार नहीं है। `विपरीत ढंग से कहें तो, यह कविता हास्य, वीभत्स, रौद्र, वीर आदि रसों से सम्बंधित नहीं है। अनिश्चित होते हुए भी यह कविता एक निश्चित भावक्षेत्र की है और उसमें कुछ उक्तियां, बिम्ब, शब्दादि, ऐसे हैं जो पढ़ने वालों को उस क्षेत्र में सोचने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। कविता की सीमा को ही यदि पाठक अपनी ही सीमा मान लें तो यही नहीं, ऐसी बहुत सी कविताएं अपूर्ण लगेंगी जो प्रभाव के लिए मूलत: भाषा के अप्रकट साधनों पर निर्भर करती है। जैसे वक्रोक्ति, श्लेष, अप्रस्तुत, उपमान आदि।`[५१] डा० गुप्त भाषा के अप्रकट साधन वक्रोक्ति, श्लेष, अप्रस्तुत, उपमान आदि के साथ ध्वनि सिद्धान्त को भी महत्व देते हैं। उनके अनुसार `ध्वनि` मत प्राय: तटस्थ है यद्यपि वह मानवीय अर्थचेतना की ओर गंभीर संकेत करता है।`[५२] इस प्रकार गुप्त जी के इन मतों से स्पष्ट हो जाता है कि वे वक्रोक्ति, श्लेष, अप्रस्तुत विधान, उपमान विधान, ध्वनि सिद्धान्त आदि भाषिक परिबलों को प्रत्यक्ष रूप से महत्व देते हैं और

नयी कविता की भाषा की गहराई एवं कलात्मकता का अंदाजा इन भाषिक परिबलों को आधार बनाकर लगाया जा सकता है।[५३] डा० मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ ने ध्वनि सिद्धान्त की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ध्वनि सिद्धान्त ऐसा सबल और सशक्त माध्यम है जिसके आधार पर नयी कविता का समग्रतया मूल्यांकन किया जा सकता है। 'यह सत्य है कि आज की कविता के सन्दर्भ में 'ध्वन्यालोक' की तरह क किसी नये ध्वनि शास्त्र की रचना नहीं की जा सकती, कारण अनेक हैं। परन्तु यदि आज की कविता का प्रभाव ग्रहण किसी भी स्तर पर किसी के भी द्वारा होता है तो ध्वनि सिद्धान्त के ही आधार पर हो सकता है।[५४] वस्तुत: साहित्य शास्त्र के ये विभिन्न सिद्धान्त शब्दार्थ के मधुर सम्बन्धों की तलहटी में उगे हुए वृक्ष की ही अनेक शाखाएं हैं। संस्कृत साहित्य के विविध आचार्यों ने इन्हीं शाखाओं को मूलाधार मानकर काव्य तत्व के असली मर्म को परखने का प्रयास किया है। 'काव्य के केन्द्रगत अर्थ को हम रस, ध्वनि, वक्रता, अमूर्त सौन्दर्य जिस किसी भी नाम से पुकारें वही रस प्रयोजनशीलता का प्रेरक है और वह काव्य का प्रयोजन न होते हुए भी काव्य के प्रयोजन से कुछ और ऊपर है। वही काव्य का आन्तरिक मर्म है।[५५] यदि ये विभिन्न काव्यशास्त्रीय सिद्धान्त काव्य के मर्म हैं तो भाषा के भी हैं। क्योंकि काव्य के यही मर्म भाषा को नबने कविता में परिणत करते हैं। चूंकि भाषा पहले है कविता बाद में। यदि किसी बनी बनाई कविता को उजाड़ दिया जाय तो भाषा के सिवा और कुछ नहीं बचता।

पाश्चात्य समीक्षकों, नयी कविता के कवियों एवं आलोचकों के मत :

पाश्चात्य समीक्षकों में नयी आलोचना के पोषक जान क्रो रैन्सम, राबर्टपेन वारेन, क्लीएन्थब्रुक्स, एलेनटेट आइवर विन्टर तथा व्लैकमूर आदि ने भाषा को मूलाधार मानकर भाषा की नियति की डोरी पकड़कर रचनाकार के मर्म का पता लगाने का प्रयास किया है। इन आलोचकों ने रचनाकार द्वारा प्रयुक्त भाषा की स्थिति में विसंगति, विडम्बना, तनाव, तनाव की व्यापकता और तनाव के घनत्व को महत्व देना आवश्यक माना है। एलेनटेट मानता है कि काव्य का आधार भाव या विचार नहीं, भाषा है। किसी कवि का दर्शन कुछ भी हो, विचार कुछ भी हो, भाव या अनुभव कुछ भी हो पाठक कवि को भाषा के द्वारा पहचानता है। नयी आलोचना सभी प्रकार की आलोचना प्रणालियों से सर्वथा मुक्त रहते हुए मात्र रचनाकार की अनुभूति की गहराई की सीमा को नापने का प्रयास करती है। भाषा के अन्तर्गत नये आलोचकों ने रचनाकार द्वारा प्रयुक्त भाषा और मानसिक भाषा सम्बन्धी तनाव, भाषा की अप्रस्तुत योजना, भाषा का आलंकारिक वर्ण- वैचित्र्य, भाषा का ध्वन्यात्मकरूप, भाषा का धनात्मक रूप, भाषा के चित्रत्व विधान आदि को समाहित किया है। 'टेंशन इन द पोयट्री में' एलेन टेट ने शब्द प्रयोग के दो रूप स्वीकार किए जो एक प्रकार से प्रस्तुत और अप्रस्तुत विधान की कोटि के हैं। अप्रस्तुत विधान के अन्तर्गत प्रतीक, अलंकार, लक्षणा, व्यंजना की गणना है तो प्रस्तुत के अन्तर्गत बिम्ब और अभिधा का। नयी कविता के समीक्षकों में डा० रविनाथ सिंह नये आलोचकों के मत को स्वीकार करते हुए यह कहते हैं कि भाषा को मूलाधार मानकर नयी कविता का सही अर्थों में

मूल्यांकन किया जा सकता है। उनके अनुसार 'नये आलोचकों की मान्यता है कि कविता का माध्यम भाषा है। कवि का भाषा प्रयोग उनसे भिन्न होता है जो केवल तथ्यों की जानकारी देने के लिए लिखते हैं। इसीलिए कृतियों की समीक्षा भाषिक सर्जना के आधार पर होनी चाहिए।[५६]

नयी कविता के कवियों एवं आलोचकों ने यह सिद्ध करने का सफल प्रयास किया कि उनकी कविता बद्ध परम्परा से हटकर जीवन की कविता है। कविता में प्रयुक्त प्रत्येक शब्द जिंदगी के अर्क में डूबे हुए हैं। इन कवियों ने प्रचलित परम्परा और पुराने काव्यशास्त्र को निर्जीव एवं निष्प्रयोजन साबित किया।" किसी भी जीवित साहित्य का साहित्य-शास्त्र भी साहित्य के साथ-साथ बदलता रहता है। यह बदलने की प्रक्रिया स्वरूप गतिशील जीवन्त एवं जागरूक चेतना की परिचायक है। जिस भाषा का व्याकरण जड़ हो जाता है, वह भाषा मर जाती है। जिस साहित्य का साहित्य शास्त्र जड़ हो जाता है वह साहित्य भी मर जाता है।[५७] नयी कविता जिस परम्परा में विकस रही है यह उसकी नई परम्परा है वह ईश्वर और धर्म से कटकर अलग हो गई है। उसका युग एक नया युग है। उसकी रचना उसके दुःख-दर्द की है। उसकी भाषा उपभोग की भाषा नहीं है। उसका कवि कर्म छिछलेपन से कहीं दूर सामाजिक विसंगतियों को उभारने का है। सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात का है। उसकी कविता उसके जीवन की कविता है।[५८] उसकी भाषा स्वयं की गढ़ी हुई है। प्रत्येक शब्द उसके घायल जीवन की विडम्बना को भंकृत करते हैं। भाषा से व्याकरण का हटा देना, क्रिया को संज्ञा से अलग कर देना उसकी मजबूरी है। उसकी कविता उसके कराहते जीवन की छटपटाहट है।[५९] नयी कविता

जीवन की कविता होने के नाते वह जीवन की वास्तविकताओं को समेटने का भगीरथ प्रयास करती है । इसीलिए उसे वास्तविक निकष की आवश्यकता है जो उसकी धड़कन को पहचानने में कायल हो सके ।

इन आलोचकों ने भाषा की रवानगी को कविता के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध किया था । दूसरी प्रमुख विशेषता यह थी कि इन आलोचकों ने कविता को बोलचाल की भाषा के निकट लाने का भरपूर प्रयास किया । नामवर सिंह का भी यही कथन है कि-`कविता को बोलचाल की भाषा के निकट लाने का अर्थ केवल बोलचाल के शब्दों को अपनाने तक सीमित नहीं है, बल्कि सही मानें में आज के जीवन की धड़कन को व्यक्त करने वाली लय को गहरे स्तर तक पकड़ना है । निस्सन्देह इस कथन से काव्य भाषा के एक नये आयाम का उद्घाटन होता है ।[६०] काव्य में भाषा के महत्व का प्रतिपादन करते हुए`आडेन` ने भी इसी बात की पुष्टि की है कि कविता का पिता कवि है और भाषा उसकी मां है ।[६१] डायलन टामस के अनुसार `काव्य सत्य भाषा की खोज से जुड़ा हुआ है । उपयुक्त भाषा कवि व्यक्तित्व के निर्व्यक्तीकरण और कविता को सर्वजनीन बनाने में सहायता पहुंचाती है ।[३२] इलियट के अनुसार- `काव्य अभिव्यक्ति का वह प्रकार है जिसमें भाषा के असंख्य साधन महत्वपूर्ण अनुभव की एक संकेपित (पैन्टर्ड) सुघटित(आर्गैनिक) इकाई में संकेन्द्रित (कसंट्रेटेड) हो जाते हैं।[६३] वैलेरी भी कविता को भाषा की कला मानता है ।[६४]

प्रतीकवादी कवि मलार्मे यह मानता है कि कविता शब्दों से बनती

है । मलार्मे के अनुसार कविता की भाषा चरम बिंदु की अवस्था की भाषा है ।[६५] विलियम हैजलिट भी मानता है कि 'कविता अत्यन्त प्रभावशालिनी भाषा है ।[६६] विनिफेड नौवोट्टनी के अनुसार 'कविता अपने चरम बिंदु तक खींच कर लाई गई भाषा है ।[६७] इस मत से नामवर सिंह का मत भी काफी हद तक मेल खाता है । उनके अनुसार 'कविता भाषा को सिकोड़ती है । कम्प्रेस करती है, सम्पूर्ण अनुभूति और आसंग को कुछ शब्दों में समेट कर प्रस्तुत करती है । यही सही है कि कविता का आग्रह शब्द पर अधिक है, यानी जिंदगी के अर्क पर ।'[६८]

'जिधर आज की कविता और भाषा उन्मुख है और ऐसी कविता का मूल्यांकन जाहिर है कि रूढ़ पारिभाषिक संज्ञाओं के दायरे में नहीं किया जा सकता । यह पहली चुनौती है ।[६९] नयी कविता के कवियों एवं आलोचकों ने जिस नये काव्यशास्त्र की संभावना की वह कवि की भाषा ही है । कविता की भाषा का देश की मानसिक भाषा के साथ भी सम्बंध होता है । किसी भी देश की मानसिक दशा उसकी भाषा में झलकती है ।[७०] भाषा के ही माध्यम से कवि अपनी अनुभूतियों को रूपायित करता है । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार-'हृद स्थित भाव व अनुभूतियां जिनका सम्बन्ध अन्तर के आनन्द के साथ है, जब तक वे घनीभूत न हो जायं कि अन्दर रोके न रुकें तब तक काव्य की सृष्टि नहीं होती और मनुष्य के पास यदि कहने की बेचैनी है तो इनके शैली, छन्द, अलंकार, व्यंग्यार्थ आदि के ज्ञान बिना भी साहित्य बन सकता है ।[७१]

नयी कविता के कवियों एवं आलोचकों ने जिस नये काव्यशास्त्र

की परिकल्पना की वह उनकी भाषा ही है और उसी के सहारे आलोचक कविता के मर्म को परखने का प्रयास करता है। विद्यानिवास मिश्र का भी यही मत है कि - 'आधुनिक काव्य भाषा की जीवन समस्याओं ने काव्यशास्त्र की भाषा की बाह्य कसौटियों को बुरी तरह फुठला दिया है,------- 'आज का संघटनात्मक काव्य शास्त्र भी बाह्य परिवेश की अपेक्षा काव्य के भीतरी परिवेश को अधिक यथार्थ मानता है। इसलिए अब यह संभव माना जाने लगा है कि काव्य भाषा का विश्लेषण बाह्य परिस्थितियों से निरपेक्ष होकर अधिक सघनता और गहराई के साथ किया जा सकता है।[७२]

कविता को जिन्दगी से भी अधिक महत्व देने का काम नई कविता के कवियों ने किया है। सर्वेश्वर अपने शरीर की प्रत्येक रग-रग में कविता का अस्तित्व पाते हैं।[७३] इन कवियों ने कविता की नई- नई परिभाषाएं भी प्रस्तुत कीं। कविता चूंकि जीवन की दर्द है और खुशी भी। कविता हवा, पानी, धूप और पेट की आग सब कुछ है। कविता कभी पंखुड़ी बनकर जिंदगी के चारों तरफ बिखर जाती है और कभी आग बनकर दर्द का अहसास दिलाती है। कवि का एक-एक बूंद खून कवि की पंक्तियों में उतरता है। वही जीवन की धड़कन है।[७४] यह निर्भ्रान्ति है कि नई कविता के कवियों ने जो आसन उसे सौंपा था वह किसी भी युग में नहीं प्राप्त हुआ। रीतिकालीन विलासिता, राजाओं की खुशामद और दरबार से हटकर इनकी कविता अन्याय और अत्याचार के विरोध में काला फण्डा है। छायावादी कविता की भाषा से पृथक इसकी भाषा क्रान्ति की भाषा है जो अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध पंख फड़फड़ाती है।[७५]

इसीलिए इन कवियों ने चकमक और चिक्कन गोल भाषा से हटकर मानव जीवन के दु:ख दर्द एवं पीड़ा को परखने का प्रयास किया । आदमी से आदमी के बीच की दूरी का अध्ययन किया । आधुनिक वैज्ञानिक बोध के कारण कुर्सी, कागज, राजनीति और मशीनों से उलझे हुए मनुष्य को मनुष्य के निकट लाने का प्रयास किया ।[७६] इन कवियों ने बिम्बों और प्रतीकों के असंवृत बीच से कटकर कविता को बोझिल होने से बचाया ।[७७] धूमिल ने बिम्बों और प्रतीकों का जबरन इस्तेमाल करने वाले कवियों की हंसी उड़ाई उड़ाई ।[७८] सुलगते हुए जीवन की अभिव्यक्ति का भार ढोने में बिम्ब और प्रतीक कितने सक्षम हो सकते हैं ? जहां पर जीवन ही आग है तो उसको वहन करने वाली भाषा भी आग होनी चाहिए । यदि वह ऐसी नहीं है तो तितली के पंख पर पटाखा बांधना खतरनाक साबित होगा ——

" आपे जवाब दो । मैं इसका क्या करूं ?
तितली के पंखों में पटाखा बांधकर
भाषा के हलके में
कौन सा गुल खिला दूं ?

इन कवियों का रास्ता अपना निजी था । इन कवियों ने पुरानी चली आती हुई काव्यशास्त्रीय परम्परा से हटकर नये काव्यशास्त्र, तथा नये-नये सिद्धान्तों की तलाश की ।[७६] नये शब्दों के प्रयोग, अर्थाभिव्यक्ति के नये विधान, कथन की नयी- नयी भंगिमाएं, वक्रोक्ति के नये आयाम प्रस्तुत किए । व्यंग्य-आक्रोश एवं विरोधाभास के ऐंठे हुए शस्त्र, प्रयोग के साधन बने । कहीं-कहीं बिलकुल अखबारी और सीधी सपाट भाषा में ये कवि तैरते प्रतीत होते हैं । नयी कविता कोई सहज कर्म नहीं है । इसके लिए अब नया काव्य शास्त्र लागू होगा जो चावल में मिले हुए कंकड को निकाल कर, अलग और चावल को

अलग दृष्टिकोण से परखने का प्रयास करेगा । कविता कोई महज कर्म न होकर बड़ा ही कठिन कार्य हो चुकी है । ' आधुनिक काव्य भाषा की जीवन्त समस्याओं ने काव्यशास्त्र की भाषा की बाह्य कसौटियों को बुरी तरह झुठला दिया है ।'[८०] हां, इस आधुनिक बोध को काव्यशास्त्रीय चौखटे में 'फिट' करने में दिक्कत होती है और यदि कोशिश भी की जाये तो या तो शास्त्र छोटा पड़ जायगा या फिर चौखटा ही टूट जायेगा ।[८१] डा० प्रभाकर माचवे ने काव्यशास्त्रीय उपदानों में नयापन लाने का सुझाव दिया है जो नई कविता पर काव्यशास्त्रीय निकष के रूप में लागू हो सकेगा । डा० माचवे का कहना है कि 'उलझी हुई संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए अलंकार विधान बदलना होगा । उपमान मांजने होंगे । रूपकों की कलई खोलनी होगी और उत्प्रेक्षाएं सचमुच भाषा के उत्स से प्रेरित हैं या नहीं यह देखना होता है ।[८२] डा० विजेन्द्र नारायण सिंह के अनुसार 'भाषा ही वह बैरोमीटर है, जिससे कवि की अनुभूति का दबाव नापा जा सकता है ।[८३] विद्यानिवास मिश्र भी भाषा को ही महत्व देते हैं उनके अनुसार रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, अलंकार, औचित्य सभी भाषा के ही उत्स हैं और भाषा के मर्म को ही पकड़ने का प्रयास करते हैं । प्राचीन भारतीय साहित्य-शास्त्र में चाहे ध्वनि सम्प्रदाय के अनुसार, चाहे रीति सम्प्रदाय के अनुसार, चाहे वक्रोक्ति सम्प्रदाय के अनुसार चाहे अलंकार सम्प्रदाय के अनुसार, चाहे औचित्य सम्प्रदाय के अनुसार भाषा की रीति-गत विशेषताओं के विश्लेषण पर ही विशेष बल दिया गया है । वस्तुत: नयी कविता के निकष के लिए अथवा काव्य शास्त्र के रूप में जो कुछ है वह उसकी भाषा ही है अब भाषा कहां जटिल तनावपूर्ण है, कहां तरल है कहां सीधी और सरल उसकी भाषिक विचलन को मोटे तौर पर परखना है ।

सन्दर्भ- सूची

१- द्रष्टव्य : सैमुअल आर लेविन : लिंग्विस्टिक-
स्ट्रक्चर इन पोयट्री, पृ० ५१-५२

२- कुंतक- वक्रोक्ति जीवितं १।७ प्र०सं० १९७७

३- यदवक्रं वच: शास्त्रे लोके च वच एव तत् ।
वक्रं च यदर्थवादादौ तस्य काव्यमिति स्मृति : ।।
भोज उद्धृत नगेन्द्र भूमिका वक्रोक्ति जीवित
दिल्ली-१९५५ पृ० ३४

४- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि- पृ० १२०

५- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि, पृ० १२०

६- डा० भोलानाथ तिवारी, शैली विज्ञान, पृ०३८,प्र०सं०१९६०

७- विद्यानिवास मिश्र, रीति विज्ञान, पृ० ४७

८- अज्ञेय तार सप्तक भूमिका-पृ० ११

९- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि, पृ० १२३

१०- आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, रसज्ञरंजन, आगरा,२०१४ वि० पृ०४८-४९

११- टी० एस० इलियट, दि म्युजिक आफ पोयट्री, आन पोयट्री
एण्ड पोयट्स, लंदन १९६५ पृ० ३१

१२- काव्यभाषा और काव्येतर भाषा, आलोचना अंक-७ विद्यानिवास मिश्र

१३- तारसप्तक, वक्तव्य-प्रभाकर माचवे, पृ०१२५ चतुर्थ संस्करण १९७२

१४- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास-सं० पृ० ५७४

१५- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बुद्ध चरित, `वाराणसी`,१९५५वि०
वक्तव्य,पृ० ३४

१६- भरत : नाट्यशास्त्र, काशी संस्कृत, सिरीज,पृ०१८।३०-३२ पृ०२१७

१७- टी० एस० इलियट, दि म्युजिक आफ पोयट्री, आन पोयट्री
एण्ड पोयट्स लंदन १९६५ पृ० ३१

१८- रामेश्वर शुक्ल अंचल, आधुनिक कवि पृ० ३२

१९- रामस्वरूप चतुर्वेदी, कविता यात्रा-रत्नाकर से रघुवीर सहाय तक पृ० १०२

२०- विशानिकाव्यानि विद्वान-ऋग्वेद-३।१।१७,अस्मा इत्
काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शस्यम् । ऋग्वेद-३।६।५
वत्सो वां मधुमद् वचो शंसीत् काव्य: कवि: । ऋग्वेद-८।८।११

२१- काव्येन कविना मेधाविना सम्बन्धिना कर्मणा कौशलेन काव्यं
कवे: स्तोतु: सम्बन्धि । यद्वा कुशव्दे।शव्दनीयं वचो वाग्रूपम् ।
सायण-ऋग्वेद-५।३६।५

२२- द्रष्टव्य पाणिनि सूत्र- ३।१।१२५

२३- (क) भामह, काव्यालंकार १।१६(ख)मम्ट : काव्य प्रकाश १।४।२

२४- रस गंगाधर-पृ०-१३ मधुसूदनी टीका, वाराणसी

२५- अज्ञेय, तार सप्तक द्वितीय संस्करण

२६- तदेतदाहु : सौशव्यं नार्थं व्युत्पत्तिरीदृशी,भामह :काव्यालंकार १।१४

२७- बारफील्ड,पोयटिक डिक्शन, पृ० ४१

२८- सो र्थस्तद्व्यक्ति सामर्थ्ययोगी शव्दश्च कश्चन ।
यत्नत: प्रत्यभिज्ञेयौ तौ शव्दार्थौ महाकवे : ।।
ध्वन्यालोक-१।८

२९- वक्रोक्ति जीवितं-१।२५-२६

३०- वही-

३१- काव्यादर्श- २।३६३ पृ० २७६ व्याख्या धर्मेन्द्रगुप्त-दिल्ली-१९७३ प्र०सं०

३२- शव्द प्राधान्यमाश्रित्य तत्र शास्त्रं पृथग्विदु:
अर्थतत्वेन युक्तं तु वदन्त्याख्यान मेतयो: ।
द्वयोर्गुणत्वे व्यापार प्राधान्ये काव्यधीर्भवेत् ।।
ध्वन्यालोक लोचन टीका-१।५

३३- रामस्वरूप चतुर्वेदी, भाषा और संवेदना, पृ० २१-२२

३४- 'प्रसाद' काव्य कला तथा अन्य निबंध, पृ० १२५

३५- पंत, 'पल्लव' भूमिका, पृ० १५

३६- वही- पृ० २०

३७- एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थैव पृथक् स्थितौ'
भतृहरि-वाक्यपदीय, म २।३१

३८- निदेश ग्रंथयो: शास्त्रं, अमरकोश, तृतीय कांड, नानार्थ वर्ग श्लोक सं०-१७६

३९- निदेश आज्ञा शासनं, शास्त्रम्यते नेन शास्त्रं।
-नाम लिंगानुशासन, पूना-१९४१, पृ० २१३

४०- गुणदोषान् शास्त्रज्ञ: कथं विभजतेजन:
किमन्धस्याधिकारोस्ति रूपभेदोपलब्धिषु ।।
अत: प्रजानां व्युत्पत्तिमभि संधाय सूरय: ।
- दण्डी- काव्यादर्श, पृ० ७

41. The Word Shastra is often found and if after the Word denoting the subject of the book or is applied collectively to the whole department of knowledge.

- Skt.English Dictonary, Sir Monier, Williams, Ed.-1963 Page-1069

४२- डा० भगीरथ मिश्र, हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ०-२

४३- डा० भगवानदास का, रसमीमांसा लेख, द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ-पृ० ३

४४- अपारे काव्य संसारे कविरेक: प्रजापति: ।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ।।
अग्नि पुराण-३३९-१०-११

४५- मैं नया कवि हूं -
इसी से जानता हूं
सत्य की चोट बहुत गहरी होती है,
मैं नया कवि हूं
इसी से मानता हूं
चश्मे के तले दृष्टि बहरी होती है,
इसी से सच्ची चोटें बांटता हूं -
झूठी मुसकानें नहीं बेचता -

- सर्वेश्वर-तीसरा सप्तक-पृ० २१८ सं० अज्ञेय

४६- हरिचरण शर्मा, नयी कविता नये धरातल, पृ० ३२

४७- दूधनाथ सिंह, सुरंग से लौटते हुए, पृ० २५

४८- डा० जगदीश गुप्त, `कवितान्तर का तर्क` पृ०--

४९- डा० वीरेन्द्र सिंह ` नए आलोचना के प्रतिमान` समकालीन हिंदी कविता संवाद` सम्पा० डा० विनय अश्विनी पाराशर, पृ० ३२

५०- डा० जगदीश गुप्त, `कवितान्तर` पृ०-२४

५१- सं० डा० जगदीश गुप्त, नयी कविता- १९६३-६४ अंक-७ पृ०८-कुंवरनारायण अनाम की कविताएं ।

५२- डा० जगदीश गुप्त, कवितान्तर, पृ० १६

५३- द्रष्टव्य-डा० जगदीश गुप्त, कवितान्तर, पृ०-६२

५४- डा० मथुरेशनंदन कुलश्रेष्ठ, टिलियर्ड का वक्रोक्ति सिद्धान्त, पृ० १११

५५- विद्यानिवास मिश्र, रीतिविज्ञान, पृ० ४०

५६- डा० रविनाथ सिंह, नयी कविता की भाषा, पृ० ९०

५७- लक्ष्मीकांत वर्मा, नये प्रतिमान पुराने निकष, पृ०-३

५८- जागने से क्या होगा मेरी नन्हीं सुहागिन ?
क्योंकि मेरा ज्ञान उसकी पंगति में नहीं बैठ सकता
उनके युग में नहीं अंट सकता
उनके काल में नहीं खप सकता
क्योंकि मैं उनका युग नहीं हूं, काल नहीं हूं
क्योंकि मेरा कर्म एक छिछली विवशता नहीं
मेरा सम्पूरक है स्वयं। मेरा धर्म परिपाटी नहीं
स्वयं की रचना है। मेरी भाषा उपभोग नहीं
अनवरत युद्ध है--- विकास है ----- जीना है मेरा-

दूधनाथ सिंह, सुरंग से लौटते हुए, पृ० २६

५९- मजबूरी है क्रोध को समझौता होते देखना
मजबूरी है बारे में बंद चूहे की भांति छटपटाना
मजबूरी है पैर से पैर हटा लेना। पैरों पर पैर रख देना
हाथों से हाथ हटा लेना। हाथों पर हाथ रख देना
भाषा से व्याकरण हटादेना
मजबूरी है क्रिया को संज्ञा से अलग कर देना
नाटक पर नाटक। झूंठ पर झूठ । नकल पर नकल
वादे पर वादे करते जाना । मजबूरी की मजबूरी है ।

- सकलदीप सिंह, आलोचना- १९६७

६०- नामवर सिंह, कविता के नये प्रतिमान, पृ० ११७

६१- डबल्यू एच- आडेन,सैलेक्टेड एसेज(लंदन)१९०८ पृ० १२०

६२- इलियट डायलन टामस, न्यु क्रिटिकल एसेज, पृ० ३११

६३- इलियट उद्धृत एलिजाबेथ ड्रिड,पोयट्री न्यूयार्क १९६४,पृ० १९

६४- पाल वैलेरी, दि आर्ट आफ पोयट्री, अनुवादक- डेनिस फौलियट (लंदन)१९५८,पृ० ६३

६५- मलार्मे उद्धृत आर्थर साइमंस(लैंग्वेज आफ ए स्टेट आफ क्राइसिस) दि सिम्बोलिस्ट मूवमेंट,इन लिटरेचर,(लंदन-१९०८)पृ० १२०

६६- विलियम हैजलिट लेक्चर्स आन दि इंग्लिस पोयट्स,लंदन-१९६०,पृ०३

६७- विनिफ्रेड़ नोवोट्टनी, दि लैंग्वेज, पोयट्स यूज-लंदन-१९६२)पृ०१२३

६८- नामवर सिंह, कहानी स्वरूप और संवेदना, पृ० ११६

६९- डा० परमानंद श्रीवास्तव, नयी कविता का परिप्रेक्ष्य, पृ०१४ नीलम प्रकाशन-इलाहाबाद

७०- द्रष्टव्य-डा० पुष्पा बंसल, हिन्दी काव्य शास्त्र में कविता का स्वरूप विकास, पृ०-२४

७१- आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी(प्रथम संस्करण)काव्यशास्त्र,पृ०१८२

७२- विद्यानिवास मिश्र, रीतिविज्ञान, पृ०-५१

७३- आग मेरी धमनियों से जलती है। पर शब्दों में नहीं ढल पाती। मुझे एक चाकू दो। मैं अपनी रगें काटकर दिखा सकता हूं कि कविता कहां है ?

- सर्वेश्वर- कुआनो नदी, पृ० ९०

७४- कविता हवा चन्द्रमा तथा धूल से अलग नहीं है,
'कविता कोई अलग क्रिया नहीं है
सूरज का चमकना। चन्द्रमा का ओझल होना
हवा की चुप्पी। धूप का विहलना-ये
सब भी कोई अलग क्रियाएं नहीं हैं।
जीवन जड़ता का ही एक पहलू है, इन्हें
और मुझे एक ही तरह जिए जाना है,
और यही सार मेरे शरीर से फटता हुआ
कविता बनकर सब ओर फै जाता है।

- वीरा, अगस्त १९६६, अकविताक कृतुज, पृ०-४९०

७५- अब मैं कवि नहीं रहा
एक काला फण्डा हूं
तिरपन करोड़ भौंहों के बीच मातम में
खड़ी है मेरी कविता।

- सर्वेश्वर-प्रक्रिया और कविता, पृ०-९८

७६- मैं अपनी कविता में शब्द या शिल्प नहीं
आदमी रखकर सोचता हूं।
आदमी से आदमी के बीच। कुर्सियां, मेजें, कागज मशीनें
भाषा पोस्टर राजनीति और क्रीज वाले कपड़े
हटाना चाहता हूं।
श्याम विमल, पुनश्च: कविता का आदमी, पृ० २९०

७७- प्रतीकों और बिम्बों के। असंवृत रूप में भी रह
हमारी जिंदगी है यह। जहां पर धूल के भूरे-गरम फैलाव
पर पसरी लहरती चादें।

मुक्ति बोध, चांद का मुंह टेढ़ा है, पृ०-१२६

७८- बढ़िया उपमा है। अच्छा प्रतीक है :
हैं! हैं! हैं! । हैं हैं हैं। ठीक है ठीक है-धूमिल संसद से सड़क तक

७९- अब नये काव्यशास्त्र के अनुसार
मुंह में बचे हुए चावल के स्वाद को
कुछ अदृश्य कंकड़ियों के हस्तक्षेप से
बचाने का नाम है कविता

- केदारनाथ सिंह, ज्ञानोदय, दिसम्बर १९६८,पृ० २१

८०- विद्यानिवास मिश्र, रीति विज्ञान, पृ० ५१

८१- डा० हरिचरण शर्मा, नयी कविता नये धरातल, पृ० ३२

८२- प्रभाकर माचवे, तारसप्तक सं० अज्ञेय , पृ०५२

८३- आलोचना-जनवरी-मार्च,१९७० वक्रोक्ति सिद्धान्त आधुनिक परिप्रेक्ष्य।

--